मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-11, अङ्क-10 जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व-15 (वि.नि.सं. 2538) अक्टूबर 2012

हम ना किसी.....

हम ना किसी के कोई ना हमारा,
झूठा है जग का व्यवहारा।
तन सम्बन्ध सकल परिवारा,
सो तन हमने जाना न्यारा॥1॥

पुण्य उदय सुख की बढ़वारा,
पाप उदय दुःख होत अपारा।
पुण्य-पाप दोऊ संसारा,
मैं सब देखन-जाननहारा॥2॥

में तिहुँ जग तिहुँ काल अकेला,
पर संजोग भया भव मेला।
थिति पूरी कर खिर-खिर जाँहि,
मेरे हर्ष शोक कछु नाहिं॥3॥

राग भावतें सज्जन जानें,
द्वेष भावतें दुर्जन मानें।
राग-द्वेष दोऊ मम नाहिं,
द्यानत मैं चेतन पद माहिं॥4॥

प्रधान सम्पादक
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार
स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल
ब्र. पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, मङ्गलायतन वि.वि.
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
श्री लक्ष्मीचन्द बी. शाह, लन्दन
श्री पवन जैन, अलीगढ़
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व विशेषाङ्क - 15

क्या / कहाँ

अवस्थादृष्टि से आत्मा 3
श्रुतज्ञान और केवलज्ञान... 9
त्रिकाल मुक्त के... 17
परिग्रह से भयभीत.... 28
समाचार-सार... 30

प्रस्तुत अङ्क-प्रकाशन में सहयोग
श्री अंश जैन
सुपुत्र
श्री अमितचतरसेन जैन
C/o. श्री सी. एस. जैन,
88 टैगोर विला, टैगोर कॉलोनी,
देहरादून - 248001 (उत्तरांचल)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।
सम्पादक : पण्डित कैलाशचन्द जैन, अलीगढ़।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व : जीवतत्त्व गताङ्क से आगे...

समाधितन्त्र ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

अवस्थादृष्टि से आत्मा के तीन प्रकार

ज्ञानस्वरूप जीव और शरीरादि अजीव, ये दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, तथापि अज्ञानी जीव, भ्रान्ति से इन दोनों को एक मानता है; शरीरादि के कार्यों को आत्मा का मानता है और आत्मा को शरीरादि बाह्य पदार्थों से हित-अहित मानता है; ज्ञान वैराग्यरूप भाव, आत्मा को हितरूप होने पर भी, उसमें वह प्रवृत्ति नहीं करता, उसमें तो अरुचि और झुंझलाहट करता है तथा राग-द्वेष-मोहरूप भाव, जीव को अहितरूप होने पर भी, उनमें निरन्तर प्रवर्तता है - उनकी रुचि नहीं छोड़ता; इस प्रकार जीव-अजीव इत्यादि तत्त्वों के स्वरूप में भ्रान्ति से प्रवर्तता है, वह अज्ञानी बहिरात्मा है।

धर्मी तो जानता है कि मैं जड़ से भिन्न हूँ, देहादिक मेरे नहीं हैं, मैं उनका नहीं हूँ; मेरा तो एक ज्ञान-दर्शन लक्षणरूप शाश्वत् आत्मा ही है, इसके अतिरिक्त संयोग लक्षणवाले जो कोई भाव हैं, वे सब मुझसे बाह्य हैं। चैतन्य के आश्रय से ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट हों, वे मुझे हितरूप हैं और बाह्य पदार्थ के आश्रय से रागादि भाव हों, वे मुझे अहितरूप हैं; इस प्रकार जीव-अजीव इत्यादि तत्त्वों की प्रतीति करके, अन्तर्मुख चैतन्यस्वरूप में वर्तता है, वह अन्तरात्मा है।

राग-द्वेष-मोह का सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द और अनन्त वीर्य जिनके प्रगट हो गये हैं, वे परमात्मा हैं। उनमें अरिहन्त परमात्मा, वे सकलपरमात्मा है और सिद्ध परमात्मा, वे निकलपरमात्मा हैं। चार घातिकर्मों के क्षय से केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय तो दोनों को समान हैं। अरिहन्त परमात्मा को चार अघाति कर्म शेष हैं, उनका प्रतिक्षण क्षय होता जाता है; बाहर में समवसरण आदि दिव्य वैभव होता है; वे परम हितोपदेशक हैं। अभी शरीर के संयोगसहित होने से वे सकलपरमात्मा हैं।

सिद्ध परमात्मा, आठों कर्मों से रहित होकर लोक के शिखर पर विराजमान हैं। अनन्त आनन्द के अनुभव में कृतकृत्यरूप से सादि-अनन्त काल तक विराजते हैं। शरीरादि का संयोग छूट गया है; इसलिए उन्हें निकलपरमात्मा कहते हैं।

सिद्ध भगवान जैसी ताकत से भरपूर इस आत्मा का स्वभाव है। उसे भूलकर अज्ञानी जीव, बाह्य विषयों में सुख-दु:ख की बुद्धि से दिन-रात जल रहा है। बाह्य में अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिलना, वह तो पुण्य-पाप के बन्ध का फल है। पूर्व में पुण्य-पाप से जो शुभ-अशुभकर्म बँधे, उनके फल में बाह्य में अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिलते हैं। वे संयोग तो आत्मा से भिन्न हैं, तथापि उन्हें सुख-दु:ख का कारण मानना, भ्रान्ति है। उस भ्रान्ति के कारण अज्ञानी जीव, अपनी आत्मशान्ति को खो बैठा है और बाह्य विषयों की प्रीति से दु:खी हो रहा है।

अतीन्द्रिय चैतन्य विषय को चूककर बाह्य इन्द्रिय विषयों में मूर्च्छित हो गया है; इसलिए बहिरात्मा निरन्तर दु:खी है। मेरे परमानन्द की शक्ति मेरे आत्मा में ही भरी है। इन्द्रिय के बाह्य विषयों में मेरा सुख नहीं है — ऐसी अन्तर प्रतीति करके धर्मात्मा, अन्तर्मुख होकर आत्मा के अतीन्द्रियसुख का स्वाद लेता है। जैसे, छोटी पीपर के दाने-दाने में चौसठ पहरी चरपराहट की ताकत भरी है; उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरपूर है परन्तु उसका विश्वास करके, उसमें अन्तर्मुख होकर एकाग्र होवे तो उस ज्ञान-आनन्द का स्वाद अनुभव में आवे। आत्मा से बाह्य विषयों में कहीं आत्मा का आनन्द नहीं है। धर्मी अपने आत्मा के अतिरिक्त बाहर में कहीं स्वप्न में भी आनन्द नहीं मानते हैं। ऐसे अन्तरात्मा अपने अन्तरस्वरूप में एकाग्र होकर, परिपूर्ण ज्ञान व आनन्द प्रगट करके स्वयं ही परमात्मा होते हैं। सर्वज्ञ होने पर भी, जब तक शरीरादि सहित है, तब तक वे अरिहन्त, सकलपरमात्मा हैं और फिर शरीररहित हो गये, वे सिद्ध, निकलपरमात्मा हैं।

इस प्रकार बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप कहा है,

उसे जानकर मोक्षार्थी को अन्तरात्मारूप उपाय द्वारा परमात्मपना साधना और बहिरात्मपना छोड़ना चाहिए।

यह समाधिशतक है। समाधि अर्थात् क्या? आधि-व्याधि और उपाधिरहित आत्मा की सहज शान्ति, वह समाधि है अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह समाधि है अथवा निर्विकल्प आनन्द के अनुभव में लीनता, वह समाधि है। वह समाधि कैसे हो? देहादिक से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान करके, उसमें एकाग्रता से समाधि होती है। आत्मा को देहादिक से भिन्न न जाने और रागादिवाला ही जाने तो उसे समाधि नहीं होती है परन्तु भ्रान्ति होती है; ऐसी भ्रान्ति, वह बहिरात्मदशा है।

जिसे सिद्ध-समान ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण, देहादिक से भिन्न आत्मा की अन्तर्दृष्टि है, वह अन्तरात्मा है। देह मैं, राग मैं - इस प्रकार पर में आत्मा के संकल्प-विकल्प से जो रहित है, वह निर्विकल्प प्रतीतिसहित है, वह अन्तरात्मा है; फिर चैतन्य में लीन होकर, जिन्होंने केवलज्ञान और परिपूर्ण आनन्द प्रगट किया है, वे परमात्मा हैं। ऐसी परमात्मदशा, परम उपादेय है।

चैतन्यस्वभाव को देहादिक से भिन्न जानकर, उसके अवलम्बन से सर्वज्ञता और आत्मा का स्वाधीन अतीन्द्रिय आनन्द, भगवान ने प्रगट किया है। वे भगवान परमात्मा, सर्वज्ञ-वीतराग और परम हितोपदेशक हैं; आनन्द से भरपूर निजरस का पान करते हैं। आत्मा में से ही उत्पन्न ऐसे परम स्वाधीन अनन्त सुख के भोगने में सदा ही लीन है। देखो, भगवान परमात्मा कैसे हैं? सर्वज्ञ-वीतराग, परम हितोपदेशी हैं। स्वयं सर्वज्ञ-वीतराग हुए और दूसरे जीवों को भी अन्तरंगस्वरूप के अवलम्बन से सर्वज्ञ-वीतराग होने का ही उपदेश दिया। महाविदेह में अभी सीमन्धर परमात्मा साक्षात् विराजमान हैं। समवसरण में उनका ऐसा उपदेश है कि तुम्हारा स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दस्वरूप है; राग का एक अंश भी

ज्ञानस्वभाव में नहीं है – ऐसे स्वभाव का अवलम्बन करो।

भगवान का उपदेश, वीतरागता का है; राग रखने का भगवान का उपदेश नहीं है। यदि राग से लाभ होता तो भगवान स्वयं राग छोड़कर वीतराग क्यों हुए? और जो वीतराग हुए हैं, वे राग से लाभ होना कैसे कहें? राग से लाभ होता है – ऐसा भगवान का उपदेश है ही नहीं। राग से लाभ होता है – ऐसा उपदेश, वह हितोपदेश नहीं, परन्तु अहितोपदेश है क्योंकि राग तो अहित है; हित तो वीतरागता ही है।

आत्मा, पर का कर्ता है – ऐसा जो मानता है, वह पर का राग कैसे छोड़ेगा? अथवा पर से आत्मा को लाभ माने तो वह पर का राग कैसे छोड़ेगा? और राग से लाभ माने तो वह भी राग को छोड़ने योग्य कैसे मानेगा? जो राग को आदरणीय मानता है, वह रागरहित वीतरागी-सर्वज्ञ परमात्मा को पहिचानता ही नहीं; सर्वज्ञदेव द्वारा प्रदत्त हितोपदेश को वह समझता नहीं है।

भगवान तो परम हित का ही उपदेश देनेवाले हैं। बन्ध के और अहित के कारणों का ज्ञान कराते हैं परन्तु उनका ज्ञान कराकर, उन्हें छुड़ाते हैं और हित के कारणरूप सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त कराते हैं।

देखो, आज ग्रन्थाधिराज समयसार की प्रतिष्ठा का दिन है, अठारह वर्ष पहले (अर्थात् वीर संवत् 2464 में)* इस जैन स्वाध्यायमन्दिर का उद्घाटन हुआ, तब यहाँ इस समयसार की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा (बहिनश्री चम्पाबेन के हस्ते) हुई है। समयसार, अर्थात् शुद्ध आत्मा; शक्तिरूप से प्रत्येक आत्मा शुद्धस्वभाव से परिपूर्ण कारणसमयसार है, उसे कारणपरमात्मा कहते हैं। इस कारणसमयसारस्वरूप शुद्ध आत्मा का स्वरूप यह समयसार बतलाता है और इस कारणसमयसार की दृष्टि करने से, इसके आश्रय से अनन्त चतुष्टयस्वरूप कार्यपरमात्मपना खिल जायेगा, वह कार्यसमयसार है। ऐसे कारणसमयसार शुद्ध आत्मा की जिसने श्रद्धा, ज्ञान और रमणता की है, उसने अपने आत्मा में भगवान समयसार की स्थापना की है। उसके

** यह प्रवचन वीर संवत् 2482 का है, तदनुसार यह गणना समझना चाहिए।*

निमित्तरूप समयसार की स्थापना का यह दिन है। भगवान की दिव्यध्वनि में कथित उपदेश, कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस समयसार में गूँथा है। सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में तीर्थंकररूप से साक्षात् विराजमान हैं, उनकी तथा उनके समवसरण की यहाँ स्थापना है और उन भगवान ने दिव्यध्वनि में जो कहा, वह इस समयसार में कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने भरा है। भव्य जीवों पर उन्होंने महान उपकार किया है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव यहाँ (भरतक्षेत्र में) हुए, विदेह में गये, दिव्यध्वनि लाये और यह समयसार रचा। यह अन्तर के कारणसमयसार का वाचक है और उस कारणसमयसार के आश्रय से कार्यसमयसार हुआ जाता है। इस प्रकार तीन समयसार हुए — एक, कारणसमयसार; उसके आश्रय से होनेवाला कार्यसमयसार; और उसके वाचकरूप यह परमागमसमयसार। ऐसे शुद्ध समयसार को पहचानकर, आत्मा में उस समयसार की स्थापना करे तो उसके आश्रय से मोक्ष के कारणरूप सम्यग्दर्शनादि प्रगट हों, उस सम्यग्दर्शनादि पर्यायरूप मोक्षमार्ग को भी कारणसमयसार कहा जाता है क्योंकि वह मोक्ष का कारण है। वह अपूर्व है, अर्थात् पूर्व में कभी ऐसे आत्मा की श्रद्धा या पहचान नहीं की है। अरिहन्त परमात्मा हुए, वे तो कार्यपरमात्मा हैं और उस कार्य का जो कारण है, वह त्रिकाली कारणपरमात्मा है। पहली ही बार यह बात सुनते हुए बहुमान लाकर हाँ करे और उसका निर्णय करके विश्वास करे, वह धर्म की अपूर्व शुरुआत है। ज्ञानस्वभाव का लक्ष्य करना ही परमहित का मार्ग है और ऐसे हित का ही उपदेश, भगवान ने किया है, अर्थात् ज्ञानस्वभाव के सन्मुख झुकने का ही भगवान का उपदेश है। पराश्रय का भगवान का उपदेश नहीं है, उसे तो छुड़ाने का भगवान का उपदेश है। पहले ऐसा निर्णय करे, उसने भगवान परमात्मा को और उनके हितोपदेश को जाना है, किन्तु जो रागादि से लाभ मानता है, उसने हितोपदेशी सर्वज्ञ-वीतराग परमात्मा को माना नहीं है, उनके उपदेश को जाना नहीं है।

अरिहन्त परमात्मा अभी देहसहित हैं, वे दिव्यध्वनि से उपदेश देते हैं

और सिद्ध परमात्मा देहरहित हो गये हैं, वे लोकाग्र में विराजमान हैं। अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा, इन्द्रिय-विषयोंरहित निजानन्द का अनुभव करते हैं। ऐसे भगवान के आनन्द को पहिचाने तो आत्मा के आनन्दस्वभाव की प्रतीति हो जाये और इन्द्रिय-विषयों में से सुखबुद्धि उड़ जाये। भगवान सादि-अनन्त अपने अतीन्द्रिय आनन्दरस का पान करते हैं। कृतकृत्य परमात्मा हैं, अपने अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द के भोग के अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य उन्हें नहीं रहा है। आत्मा की शक्ति में से आनन्द उछला है, उसके अनुभव से परमात्मा कृतकृत्य है। ऐसी कृतकृत्य परमात्मदशा ही जीव को परमहितरूप है और वही सर्व प्रकार से उपादेय है।

इस प्रकार बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप कहा; उसे जानकर, बहिरात्मपना छोड़ो और भिन्न आत्मा के भान द्वारा अन्तरात्मा होकर, परमात्मपद को साधो - ऐसा तात्पर्य है। *क्रमशः*

आगामी विशिष्ट आयोजन

शाश्वत तीर्थधाम में पञ्च कल्याणक महोत्सव

सम्मेदशिखर : शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर की पावन धरा पर निर्मित श्री कुन्दकुन्द कहान नगर में आगामी 24 नवम्बर से 29 नवम्बर 2012 तक श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया जा रहा है। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन, अध्यात्म जगत के विशिष्ट विद्वानों द्वारा प्रासङ्गिक स्वाध्याय के लाभ के साथ-साथ पावन तीर्थराज की वन्दना का लाभ भी प्राप्त होगा। अत: सभी साधर्मी बन्धुओं से इस अवसर पर सपरिवार, इष्ट मित्रों सहित पधारने का विनम्र अनुरोध है।

निवेदक : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट,
173-175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई।

सैद्धान्तिक चर्चा गताङ्क से आगे

श्रुतज्ञान और केवलज्ञान...

श्री रामजी माणेकचन्द दोशी, सोनगढ़

धर्म का मूल सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ-वीतराग कथित तत्त्वार्थों का श्रद्धान, विपरीत अभिप्रायरहित और भावभासनसहित श्रद्धान है, जो निज शुद्ध अन्त:तत्त्व के आश्रय से ही हो सकता है। जो जीव अपने हित (-सुख) के इच्छुक हैं, उनको सात तत्त्व में भी मोक्षतत्त्व (-अपना सर्वज्ञ-वीतराग स्वभाव) कैसा है और अपूर्व साधन द्वारा मोक्षदशा प्रगट करनेवाले अरहन्त और सिद्ध परमात्मा (सर्वज्ञ) का स्वरूप क्या है? - वह विशेषरूप में अच्छी तरह जानना ही चाहिए। जिनको अपूर्व तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा होगी, संसार-भव-दु:ख से भयभीत होंगे, यथार्थता-वीतरागता को ही ग्रहण करना चाहते हैं, वे मध्यस्थता से और धैर्य से इस लेखमाला को पढ़कर सच्चे समाधान को प्राप्त करेंगे।

प्रश्न 2 की भूमिका

प्रथम प्रश्न के उत्तर का विशेष स्पष्टीकरण अन्तिम प्रश्न तक आवेगा; इसलिए उसको बराबर पढ़ लेना - ऐसा अनुरोध है,

जिज्ञासुओं को विशेष समझने योग्य :—

श्री जैन सिद्धान्त में 'समय' तीन प्रकार का है -

(1) ज्ञानसमय (2) अर्थसमय (3) शब्दसमय। श्री पञ्चास्तिकाय, गाथा 3 की टीका में कहा है कि -

(1) पाँच अस्तिकाय का 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (राग-द्वेष से विकृत नहीं हुआ) पाठ (मौखिक या शास्त्रारूढ़ निरूपण), वह शब्दसमय है, अर्थात् शब्दागम, वह शब्दसमय है।

(2) मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, उस पञ्चास्तिकाय का ही सम्यक् अवाय, अर्थात् सम्यक्ज्ञान, वह ज्ञानसमय है, अर्थात् ज्ञानागम, वह ज्ञानसमय है।

(3) कथन के निमित्त से ज्ञात हुए उस पञ्चास्तिकाय का ही वस्तुरूप से समवाय, अर्थात् समूह, वह अर्थसमय है, अर्थात् सर्व पदार्थसमूह, वह अर्थसमय है।

श्री प्रवचनसार, भगवान की दिव्यध्वनि का सार है क्योंकि प्रवचन का अर्थ दिव्यध्वनि होता है। श्री प्रवचनसार में तीन अधिकार आये हुए हैं –

(1) ज्ञान अधिकार (2) ज्ञेय अधिकार (3) चरणानुयोग अधिकार। श्री प्रवचनसार के ज्ञान अधिकार में गाथा 49 की टीका में कहा है कि –

'अपने को जानने पर, समस्त ज्ञेय ऐसे ज्ञात होते हैं कि मानों वे ज्ञान में स्थित ही हों, क्योंकि ज्ञान की अवस्था में से ज्ञेयाकारों को भिन्न करना अशक्य है। यदि ऐसा न हो तो (यदि आत्मा सबको न जानता हो तो) ज्ञान के परिपूर्ण आत्मसञ्चेतन का अभाव होने से, परिपूर्ण एक आत्मा का भी ज्ञान सिद्ध न हो' – यह **ज्ञानसमय** हुआ।

श्री प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार की गाथा 200 में निम्न प्रकार कहा है –

'ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध की अनिवार्यता के कारण, ज्ञेय-ज्ञायक को भिन्न करना अशक्य होने से, विश्वरूपता को प्राप्त होता हुआ भी जो (शुद्धात्मा), सहज अनन्त शक्तिवाले ज्ञायकस्वभाव के द्वारा एकरूपता को नहीं छोड़ता' – यह **अर्थसमय** हुआ।

श्री प्रवचनसार, चरणानुयोग अधिकार, गाथा 234 की टीका में कहा है कि –

'सर्वतः चक्षुत्व की सिद्धि के लिए भगवन्त श्रमण, आगमचक्षु होते हैं। यद्यपि ज्ञेय और ज्ञान का पारस्परिक मिलन हो जाने से उन्हें भिन्न करना अशक्य है (अर्थात् ज्ञेय, ज्ञान में ज्ञात न हों – ऐसा करना अशक्य है), तथापि वे उस आगमचक्षु से स्व-पर का विभाग करके, जिनने महा मोह को भेद डाला है – ऐसे वर्तते हुए, परमात्मा को पाकर, सतत् ज्ञाननिष्ठ ही रहते हैं।' यह **शब्दसमय** हुआ।

यहाँ पर इस प्रकार समझना कि सर्वत्र ज्ञानसमय में, अर्थसमय में और शब्दसमय में सब बातें एक प्रकार से आती हैं; इसमें परस्पर विरोध कभी नहीं होता है, इसलिए अर्थसमय सादि-सान्त हो और ज्ञानसमय में अनादि-अनन्त भासे और शब्दसमय में (अर्थात् आगम में) अर्थ को अनादि-अनन्त कहने में आवे - ऐसा कभी हो सकता नहीं है। श्रुतज्ञान में एक प्रकार से जानने में आवे और उससे विपरीतरूप केवलज्ञान में जानने में आवे तो वह दोनों ज्ञान 'ज्ञानसमय' रहता नहीं है परन्तु ऐसा कभी होता ही नहीं है।

जिस प्रकार केवली के ज्ञान में वस्तुस्वरूप आता है, वैसा ही श्रुतकेवली के ज्ञान में आता है। देखिये, श्री नियमसार की मूल गाथा 1 में कहा है कि **'केवली सुदकेवली भणिदं',** उसकी टीका में उसका अर्थ निम्न प्रकार से किया गया है - केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ है। 'केवली' वे सकलप्रत्यक्षज्ञान को धारण करनेवाले और 'श्रुतकवेली' वे सकल द्रव्यश्रुत को धारण करनेवाले - ऐसे केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ।

ज्ञान और ज्ञेय का न्यायशास्त्र के अनुसार अविनाभाव सम्बन्ध है और आगम के अनुसार उसका परस्पर अनिवार्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है; इसलिए जैसे केवली और सम्यक् श्रुतज्ञानी जानते हैं, वैसा ही ज्ञेय का स्वरूप, परिणमन आदि स्वयमेव-स्वत: होता है; इससे विरुद्ध कभी होता ही नहीं है। ज्ञान, ज्ञेय को जबरदस्ती से परिणमित करावे और ज्ञेय, ज्ञान को जबरदस्ती से परिणमित करावे तो निमित्त ने उपादान पर निश्चय से प्रभाव डाला - ऐसा हो जायेगा। निमित्त का कुछ भी प्रभाव उपादान पर हो तो वे दोनों द्रव्य एक हो जावेंगे। निमित्त होते ही हैं, किन्तु निमित्त चाहिए - ऐसी मान्यता में निमित्ताधीन दृष्टिरूप मिथ्यात्व और अनवस्था दोष आता है।

ज्ञान में ज्ञेय का जैसा स्वरूप, परिणमन आदि आता है, वैसा ही ज्ञेय का स्वरूप और परिणमन स्वयमेव - स्वत: तीन लोक और तीन काल में होता है। जैसा, ज्ञेय का स्वरूप और परिणमन है, वैसा ही ज्ञान जानता है,

अर्थात् उसका ज्ञान स्वयमेव-स्वत: करता है, तीन लोक और तीन काल में इससे विपरीत होता नहीं है।

इसलिए स्वामी विद्यानन्दजी ने अपने 'पात्रकेसरी' स्तोत्र में केवलज्ञान का शब्द दिया है और कहा है कि भगवान के ज्ञान के वश सब पदार्थों का परिणमन तीनों काल होता है। इस प्रकार सब आचार्यों का एक ही प्रकार का मत है। कोई भी भविष्य की विकारी पर्याय और उसका निमित्त, भगवान के ज्ञान में तात्कालिकरूप से न आवे, ऐसा बन सकता ही नहीं है।

सम्यक्ज्ञान के प्रकार :

सम्यक्ज्ञान के पाँच प्रकार हैं -

(1) सम्यक्मति (2) सम्यक्श्रुत (3) सम्यक्अवधि (4) मन:पर्यय और (5) केवलज्ञान।

एक से चार तक के ज्ञान छद्मस्थ के होते हैं; केवलज्ञान, सर्वज्ञ को होता है। छद्मस्थ का सम्यक्ज्ञान चार में से किसी भी प्रकार का हो, वह सब केवलज्ञानानुसार है। केवलज्ञान में एक प्रकार से जानने में आवे और इन चार प्रकार के सम्यक्ज्ञान में उससे उल्टा (विपरीत) जानने में आवे तो उसका सम्यक्रूप रहेगा ही नहीं। युगपत् सर्व भासन हो या क्रम भासन हो - यह दूसरी बात है। *(देखिये, स्वामी समन्तभद्र कृत 'आत्ममीमांसा' श्लोक 101)*

वस्तुस्वरूप का जो ज्ञान, छद्मस्थदशा में निश्चित् किया था, वह ही केवलज्ञान में जाना, तब प्रतीति परम अवगाढ़ होती है। केवलज्ञान होने पर, यदि छद्मस्थ अवस्था का सम्यक्ज्ञान असत्य था, ऐसा जानने में आवे तो श्रद्धा भिन्न-भिन्न होगी और ज्ञान भी मिथ्या होगा; छद्मस्थ के ज्ञान में और केवली के ज्ञान में हीनता-अधिकता, अस्पष्टता-स्पष्टता का अन्तर हो, वह दूसरी बात है किन्तु जिस प्रकार वस्तु, केवलज्ञान में अनादि अनन्त ज्ञात होती है; उसी प्रकार छद्मस्थ के सम्यक्ज्ञान में भी वस्तु, अनादि-अनन्त ज्ञात होती है। छद्मस्थ के ज्ञान में जो वस्तु, अनादि-अनन्त जानने में आती है, वही वस्तु केवलज्ञान में भी अनादि-अनन्त जानने में

आती है क्योंकि सब सम्यक्ज्ञान, केवलज्ञानानुसार है - एक दूसरे से विरुद्ध नहीं होते हैं।

(देखिये, श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, देहली से प्रकाशित, हिन्दी, अध्याय 9, पृष्ठ 475)

इस विषय में श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 196 की टीका में कहते हैं कि -

'अरे तार्किक भव्य! संसारी जीवों का परिमाण अक्षयानन्त है; इसलिए केवली, केवलज्ञान दृष्टि से और श्रुतकेवली, श्रुतज्ञान दृष्टि से ऐसा ही देखा है; इसलिए यह सूक्ष्मता तर्क गोचर नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण और आगम प्रमाण से विरुद्ध होने से वे तर्क अप्रमाण हैं। जैसे, किसी ने कहा कि अग्नि उष्ण नहीं क्योंकि अग्नि है, वह पदार्थ है; जो-जो पदार्थ हैं, वे-वे उष्ण नहीं — जैसे, जल उष्ण नहीं है - ऐसा तर्क किया परन्तु यह तर्क प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध है; अग्नि प्रत्यक्ष उष्ण है; इसलिए यह तर्क, प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार जो केवली प्रत्यक्ष और आगमोक्त कथन से विरुद्ध होने से तेरा तर्क, प्रमाण नहीं.... ।'

बहुत कहने से क्या? सर्व तत्त्वों का वक्तापुरुष जो है आप्त, उसकी सिद्धि होने पर, उस आप्त के वचनरूप जो आगम, उसकी सूक्ष्म, अन्तरित, दूरि पदार्थों के विषय में प्रमाणता की सिद्धि होती है; इसलिए उस आगमोक्त पदार्थों के विषय में मेरा चित्त निस्सन्देहरूप है। बहुत वादी होने से क्या साध्य है? (क्या लाभ है? कुछ नहीं)।'

जिस प्रकार श्री नियमसार की गाथा 1 में कहा है, उसके अनुसार ही यहाँ पर कहा है कि केवलज्ञान की दृष्टि और श्रुतकेवली की श्रुतज्ञानदृष्टि एक ही प्रकार से वस्तु को देखती है, उसमें विरोधता होती नहीं है। आगम, आप्त के वचनरूप है और पदार्थ, आप्त के ज्ञान में आये - ऐसे ही है। इसलिए केवलज्ञान में वस्तु सादि-सान्तरूप भासे और उसकी संख्या अनन्त भासे, ऐसा बनता ही नहीं है। श्री समयसार की मूल गाथा 1 की संस्कृत टीका में 'श्रुतकेवली भणितम्' ऐसा जो अर्थ है, उसका स्पष्टीकरण करते हुए श्री समयसार के पृष्ठ 6 में कहा है कि सर्वज्ञदेव और श्रुतकेवली, गणधरदेव

दोनों वस्तु के स्वरूप को विरोधता से जानते ही नहीं है और वे एकरूप से ही जानते हैं; इसलिए श्रुतकेवली के द्वारा कथित होने से परमागम प्रमाणता को प्राप्त है। आप्तमीमांसा की हिन्दी टीका पृष्ठ 2 में भी ऐसा ही लिखा है।

श्रुतज्ञान और केवलज्ञान समान हैं और केवलज्ञान में सब बातें निश्चित् हैं।

केवलज्ञान में और श्रुतज्ञान में इस विषय में कुछ भी अन्तर है ही नहीं। कितने लोग ऐसा मानते हैं कि श्रुतज्ञान में वस्तु अनादि-निधन है और केवलज्ञान में सादि-सान्त हैं - यह मान्यता मिथ्या है। इस विषय में श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 369 की टीका में श्रुतज्ञान की महिमा कहते हैं कि -

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं॥369॥

श्रुतकेवलं च ज्ञानं द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात्।
श्रुतज्ञानं तु परोक्षं प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानं॥369॥

अर्थात् श्रुतज्ञान और केवलज्ञान, दोनों समस्त वस्तुओं के द्रव्य-गुण-पर्याय जानने की अपेक्षा समान हैं। इतना विशेष, श्रुतज्ञान परोक्ष है; केवलज्ञान, प्रत्यक्ष है।

भावार्थ - जैसे केवलज्ञान का अपरिमित विषय है, वैसे ही श्रुतज्ञान का अपरिमित विषय है। शास्त्र से सभी को जानने की शक्ति है परन्तु श्रुतज्ञान सर्वोत्कृष्ट होने पर सर्व पदार्थों के विषय परोक्ष कहना अविशद-अस्पष्ट ही है, क्योंकि अमूर्तिक पदार्थों के विषय या सूक्ष्म अर्थपर्यायों के विषय या अन्य सूक्ष्म-सूक्ष्म अंशों के विषय विशदता करके प्रवृत्ति श्रुतज्ञान की नहीं होगी और जो मूर्तिक व्यञ्जनपर्याय या अन्य स्थूल अंश इस ज्ञान के विषय हैं, उनके विषय भी अवधिज्ञानादि की भाँति प्रत्यक्षरूप नहीं प्रवर्ते हैं। इससे श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान को प्रत्यक्ष कहिए विशद

और स्पष्टरूप मूर्तिक-अमूर्तिक पदार्थ, स्थूल-सूक्ष्म पदार्थ उनके विषै प्रवर्त्तै हैं, क्योंकि समस्त आवरण और वीर्यान्तराय के क्षय से प्रगट होते हैं, इसलिए प्रत्यक्ष है। 'अक्ष' कहिए आत्मा, उसके प्रति निश्चित् होकर परद्रव्य की अपेक्षा नहीं चाहते हैं, इसलिए प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष का लक्षण, विशद या स्पष्ट है। जहाँ अपने विषय को जानने में कमी नहीं होती, उसको विशद या स्पष्ट कहते हैं और उपात्त या अनुपात्तरूप परद्रव्य की अपेक्षासहित जो होता है, उसको परोक्ष कहते हैं। इसका लक्षण अविशद अस्पष्ट जानना। मन, नेत्र अनुपात्त है, अन्य चार इन्द्री उपात्त हैं। इस प्रकार श्रुतज्ञान, केवलज्ञान विषय प्रत्यक्ष-परोक्ष लक्षण भेद से भेद है और विषय अपेक्षा समानता है। इसलिए श्री समन्तभद्राचार्य ने देवागम स्तोत्र विषैं कहा है -

स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्व तत्त्व प्रकाशके।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥

इसका अर्थ : स्याद्वाद तो श्रुतज्ञान और केवलज्ञान, यह दोनों सर्व तत्त्व के प्रकाशी हैं परन्तु प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद से भेद पाते हैं। इन दोनों प्रमाणों के विषय अन्यतम जो एक, सो अवस्तु है, एक का अभाव माने तो दोनों का अभाव-विनाश जानना अर्थात् इनमें से एक ही कहिये और एक न कहिए तो ऐसा अन्यतम होय तो अवस्तु होय *(देखिये, श्री आप्तमीमांसा, हिन्दी, पृष्ठ 109)* वस्तुरूप से यह दोनों एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं।

(देखिये, पण्डित टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी, देहली से प्रकाशित, पृष्ठ 512)

नोट : केवलज्ञान में सर्व पदार्थ 'निश्चित्' हैं; कोई भी पदार्थ, उपादान-निमित्त और उसका कोई भी धर्म / अंश अनिश्चित् है ही नहीं - ऐसा बताने के लिए टीका में 'निश्चित्' शब्द आया है। ऐसा न माने और कोई भी अंश को अनिश्चित् माने, वह अल्पज्ञान को केवलज्ञान मानता है। उसको सर्वज्ञ का ज्ञान पराकाष्ठारूप परिणमित है - ऐसी श्रद्धा है ही नहीं।

श्री प्रवचनसार की गाथा 80 में स्पष्ट लिखा है कि जो जीव,

अरहन्तदेव के द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्व को यथार्थपने जानता है, उसका पुरुषार्थ परसम्मुख से हटकर स्वसन्मुख हुए बिना रहता नहीं है और उसी प्रकार आत्मा का ज्ञाता हो जाता है।

जो जीव, अरहन्त की पर्याय को (केवलज्ञान की पर्याय को) पराकाष्ठारूप से मानते नहीं हैं, अर्थात् कोई भी विकारी पर्यायों को और उसके निमित्तादि को अनिश्चित् मानते हैं, उन जीवों की पर्याय सदा परसम्मुख रहेगी, स्वसम्मुख होगी ही नहीं, अर्थात् पर की कर्ताबुद्धि, पर से लाभ-नुकसान की बुद्धि और राग के कर्तापना की बुद्धि जो अनादि से चली आती है, उसका अभाव होगा ही नहीं, उसकी दृष्टि संयोग की ओर झुकनेवाली और सदैव परद्रव्य, अर्थात् निमित्त-आधीन रहेगी और उसको स्वाधीनता का प्रगटपना कभी होगा ही नहीं। **क्रमशः**

क्या है उत्तम क्षमा धर्म ?

जिन्होंने अपने चैतन्यस्वरूप के भान द्वारा पुण्य-पाप दोनों को समान माना है और जिनके ज्ञायकदशा प्रकट हुई है, ऐसे मुनियों का चित्त धीर-वीर होता है। उनकी परिणति में अनन्त धैर्य प्रगट हुआ है, इस कारण मन में क्षोभ नहीं होता और पुरुषार्थ में वीरता है, इसलिए वह स्वभाव में स्थिर रहने का कार्य करती है। बाह्य में यदि कोई निन्दा करता है तो किसकी ? और स्तुति करता है तो किसकी ? बन्धन करता है तो किसे ? और यदि सेवा करता है तो किसकी ? यह शरीर तो मैं नहीं हूँ और मेरे आत्मा को कोई बंधनादि के द्वारा हानि नहीं पहुँचा सकता, ऐसा भान तो सम्यग्दृष्टि को भी होता है परन्तु उसके पश्चात् विशेष पुरुषार्थ के द्वारा चारित्रदशा प्रगट होने पर विकल्प भी उत्पन्न न हो और सहजक्षमा प्रगट हो, वह उत्तम क्षमाधर्म है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दशधर्म प्रवचन

परमात्माप्रकाश गाथा 68 पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

त्रिकाल मुक्त के आश्रय से मुक्ति

अब कहते हैं कि आत्मा, जन्म-मरण और बन्ध-मोक्ष को ही करता नहीं है।

ण वि उप्पज्जइ ण व मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थें जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥68॥
हे योगि! ना उत्पन्न हो मरता नहीं है आतमा।
परमार्थ से ना बंध ना ही मोक्ष करता जिन कहा॥

अर्थात् हे योगी! परमार्थ से यह आत्मा न तो उत्पन्न होता है, और न मरता है; यह बन्ध और मोक्ष भी नहीं करता है — ऐसा जिनेन्द्र देव कहते हैं।

आहा! परमात्मप्रकाश तो परमात्मप्रकाश ही है!!

आत्मा एक वस्तु है। वह अनादि-अनन्त एकरूप भाव से रही है। आत्मा को उसके एकरूप स्वभाव की दृष्टि से देखें तो वह जन्म को नहीं करता, मरण को नहीं करता; बन्ध नहीं करता और मोक्ष भी नहीं करता; जैसा है, वैसा ही तीनों काल है - ऐसा इस गाथा में निरूपण करते हैं।

देखो, इसमें आचार्यदेव ने जिनवर को साक्षी में बीच में लिया है। जिनवर-त्रिलोकीनाथ योगीश्वर ऐसा कहते हैं। हे आत्मा! वस्तु की दृष्टि से देखें तो आत्मा जन्मता नहीं, आत्मा मरता नहीं और बन्ध-मोक्ष को करता नहीं। द्रव्यबन्ध और द्रव्यमोक्ष को तो करता नहीं परन्तु भावबन्ध और भावमोक्ष को भी नहीं करता। भावबन्ध को छोड़कर अपनी पर्याय में भावमोक्ष को आत्मा नहीं करता। यह बात सुनना सुनने जैसी है। तीन लोक के नाथ भगवान परमेश्वरदेव, समवसरण में यह बात फरमाते थे।

आत्मा तो भगवान है, वह कोई बन्ध को करे? जो बन्ध को नहीं करता, उसे मोक्ष करना कहाँ रहा? बन्ध को करे, वही मोक्ष को करे। आत्मपदार्थ तो पर्याय के बन्ध और पर्याय की मुक्ति से रहित ही है। एक

समय का बन्ध और एक समय की मुक्ति, वे दोनों पर्यायें हैं; वस्तु उनसे रहित है। मोक्ष भी एक समय की पर्याय है। सिद्धपना, वह कहीं आत्मा का द्रव्य-गुणपना नहीं है। मोक्ष है, वह अनुपचरित सदभूतव्यवहारनय का विषय है क्योंकि वह वस्तु का एक समयमात्र का अंश है, त्रिकाल शुद्धभाव का विषय नहीं; त्रिकाल शुद्धभाव का विषय तो अखण्ड एकरूप निजद्रव्य है।

भगवान कहते हैं - केवलज्ञान और सिद्धदशा भी तेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं है, अंश है; इसलिए वह व्यवहार है; तेरी अपनी सत्ता में है, इसलिए सद्भूत है परन्तु अंश होने से व्यवहार है। द्रव्य का आदर करने से वह प्राप्त होता है। द्रव्य को प्राप्त करने से पर्याय हो जाती है परन्तु वह शुद्धनय का विषय नहीं है। पर्याय, सम्पूर्ण आत्मा नहीं है। संवर, निर्जरा, और मोक्ष भले ही शुद्धपर्याय है परन्तु वह कहीं पूरा द्रव्य नहीं है। पूर्ण द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखें तो वह द्रव्य, बन्ध और मोक्ष को कैसे करे?

अभी तो जिसे शरीर की क्रिया करनी है, राग करना है, राग करने से लाभ मानना है, उसे यह बात कहाँ से जँचे? परन्तु विचार करे तो समझ में आये कि जो वस्तु के स्वरूप में नहीं, उससे वस्तु में लाभ किस प्रकार होगा? अभेद अखण्ड द्रव्य, शुद्धपर्याय को भी नहीं करता; शुद्धता प्रगट होती है, वह भी व्यवहारनय का विषय है। जो भेदरत्नत्रय से अभेदरत्नत्रय होना मानता है, वह तो भूल में है। अहो! महान चैतन्य प्रभु पर दृष्टि देना और एकाकार होना, वह भी व्यवहारनय का विषय है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह मोक्षमार्ग है परन्तु एक समय की अवस्था होने से वह व्यवहारनय का विषय है। त्रिकाली द्रव्य ही निश्चयनय का विषय है; उसकी अपेक्षा से शुद्ध अवस्था भी, अंश होने से व्यवहार है और व्यवहार तो जाननेयोग्य है, आदरयोग्य तो एक शुद्धात्मा ही है।

पूर्णदशा, जो सिद्धदशा वह भी जाननेयोग्य है; आदरयोग्य तो एक त्रिकाली द्रव्य ही है।

अज्ञानी को ऐसा लगता है कि अरे! इसमें तो मस्तिष्क काम नहीं

करता... परन्तु भाई! जिसका मस्तिष्क काम करता है, ऐसे चेतन को ही यह कहा जाता है। यह जड़ को नहीं कहते हैं।

बन्ध की एक समय की विकृत अवस्था और मोक्ष की एक समय की अविकृत अवस्था, इन दोनों से रहित भगवान आत्मा त्रिकाल एकरूप है। बन्ध-मोक्ष से रहित है — ऐसा तीन लोक के नाथ परमपूज्य जिनेन्द्रदेव ने फरमाया है। 'द्रव्य' शुद्धनय का विषय है; 'पर्याय' वह व्यवहार का विषय है और दोनों होकर प्रमाण का विषय होता है।

अरे! जिसके घर में अनन्त आनन्द की लक्ष्मी भरी है, अनन्त ज्ञान के परिपूर्ण भण्डार भरे हैं, अनन्त वीर्य और चारित्ररस के भण्डार जिसमें भरे हैं, जिसमें प्रभुता, स्वच्छता और पूर्ण प्रगट होने की योग्यतावाले गुण के भण्डार भरे हैं, वह एक अंश में कहाँ से आ जायेगा? वस्तु अंशरूप कैसे होगी (नहीं होती)।

आशय यह है कि यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति के अभाव के कारण शुभ, अशुभ उपयोग से परिणमन करके जीवन-मरण और शुभ-अशुभ कर्मबन्ध को करता है।

आत्मा, अर्थात् ज्ञानादि शुद्ध गुण का ध्रुवपिण्ड एकरूप वस्तु; उसकी अनुभूति, अर्थात् एकरूप ध्रुव आत्मा के अनुभवरूप पर्याय। अनन्त गुण का एकरूप, ऐसी वस्तु को अनुसरण करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय होती है परन्तु ऐसा अनुभव जिसे नहीं है, ऐसे अनादि से अज्ञानी जीवों को पर्याय में वस्तु की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता का अभाव है। वस्तु का लक्ष्य, उसकी रुचि और उसमें स्थिरता का पर्याय में अभाव है; इसलिए परिणाम में शुभ-अशुभभाव का कर्ता हुआ, वह पर्याय में जन्म-मरण करता है तथा कर्मबन्ध भी करता है।

मूल गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि आत्मा बन्ध और मोक्ष को नहीं करता परन्तु टीकाकार, टीका में यह बात भी सिद्ध करते हैं कि पर्यायदृष्टि से आत्मा, बन्ध-मोक्ष को करता है।

शुद्ध परमपारिणामिकभावरूप वस्तु है वह बन्ध की कर्ता नहीं तथा

मोक्ष की कर्ता नहीं। ध्रुवद्रव्य कभी बन्ध को, मोक्षमार्ग को और मोक्ष को करता ही नहीं, परन्तु द्रव्य की पर्याय में वस्तु के शुद्धस्वरूप की अनुभूति नहीं है, इसलिए पर्याय में वह शुभ और अशुभभावरूप परिणमन कर जीवन, मरण और शुभ-अशुभ कर्म का बन्ध करता है।

जो मूल वस्तु है, वह तो पर्यायरहित ध्रुव है, वह निश्चय का विषय-निश्चयतत्त्व है और उसकी पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय-व्यवहार तत्त्व है। एकरूप ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वह निश्चयतत्त्व है और पर्याय, व्यवहार तत्त्व है। इस व्यवहार तत्त्व में जब तक वस्तु का लक्ष्य नहीं, वस्तु की रुचि और लीनता नहीं, अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं, तब तक शुभ और अशुभभाव की अनुभूति होती है। पर्याय, शुभ और अशुभभाव को करती है। त्रिकाल ध्रुव वस्तु तो उत्पाद-व्यय को अथवा शुभ-अशुभभाव को करती ही नहीं। पर्याय में भी शुभ-अशुभभाव करने का स्वभाव नहीं है परन्तु शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं है, इसलिए अज्ञान से शुभाशुभभाव का परिणमन होता है और इससे कर्मों का बन्धन भी होता है। जब पर्याय में शुद्ध आत्मा की अनुभूति होती है, अर्थात् स्वस्वरूप की श्रद्धा, स्वस्वरूप का ज्ञान और स्वस्वरूप में स्थिरता होती है, तब पर्याय में मोक्ष का मार्ग शुरु हो जाता है; वह पर्याय, शुद्धोपयोग की परिणत हो जाती है, पूर्ण शुद्धता हो जाती है, वह मोक्ष है। इस प्रकार बन्ध, मोक्षमार्ग और मोक्ष का कर्ता, व्यवहार आत्मा है; ध्रुव उन्हें नहीं करता है।

बन्ध, मोक्ष और मोक्षमार्ग, निश्चयवस्तु में नहीं है; इसलिए निश्चयनय से देखें तो वस्तु तो त्रिकाल एकरूप है। उसमें बन्ध, बन्धमार्ग, मोक्ष और मोक्षमार्ग - इन सबका अभाव है। एकरूप त्रिकाल सत्त्व में बन्ध-मोक्ष है ही नहीं; मात्र उसकी एक समय की पर्याय में शुद्धात्मा की अनुभूति के अभाव से वह शुभाशुभरूप परिणमती है, जीवन-मरण को करती है और कर्म को बाँधती है। वही द्रव्य अपने शुद्धात्मानुभूति के काल में शुद्धोपयोगरूप परिणमकर मोक्ष को करता है, वह मोक्ष भी व्यवहार है। निश्यचयवस्तु में मोक्ष की पर्याय भी नहीं है।

इस प्रकार पर्याय में बन्ध, मोक्ष होने पर भी, शुद्ध पारिणामिकपरमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से देखने पर आत्मा, बन्ध को और मोक्ष को नहीं करता। पर्यायरूपी व्यवहार आत्मा ही पर्याय में बन्ध और मोक्ष को करता है।

वस्तु सदृशरूप से रहनेवाली है, अर्थात् चेतन... चेतनरूप से रहनेवाली है, वह निश्चयनय का विषय-निश्चयतत्त्व है और अवस्था का होना तथा अवस्था का जाना, वह व्यवहारनय का विषय-पर्यायतत्त्व है; इसमें पर के साथ तो कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। निश्चयध्रुव है और पर्याय व्यवहार है। निश्चय में पर्याय भी नहीं, अकेला ध्रुव है। उसमें बन्ध नहीं, मोक्षमार्ग नहीं और मोक्ष भी नहीं।

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझने में सूक्ष्म नहीं है। समझना चाहे, उसे समझ में आ ही जाये, ऐसी बात है। पहली बार यह बात सुने तो न समझ में आये - ऐसा नहीं है। एकदम सादी भाषा में बात चलती है।

आत्मा एक शाश्वत् अकृत्रिम वस्तु है, उसमें दो प्रकार हैं — एक शाश्वत् सदृश रहनेवाला भाग और एक विसदृश होनेवाला पर्याय तत्त्व है। उसमें शाश्वत् सदृश तत्त्व को सदा ही जैसा है, वैसा ही है परन्तु विसदृश ऐसे पर्यायतत्त्व में शुभ-अशुभभाव होते हैं और शुद्धात्मा की अनुभूति तथा मोक्ष भी उसमें ही होता है; इसलिए सदृश वस्तु की अपेक्षा से वस्तु में बन्ध-मोक्ष नहीं है परन्तु विसदृश पर्याय की अपेक्षा से वस्तु में बन्ध-मोक्ष की सभी अवस्थाएँ होती हैं।

बन्ध की पर्याय तो अशुद्ध है, इसलिए अपरमभाव ही है परन्तु मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय भी क्षणिक होने से अपरमभाव है। क्षायिकभाव, अपरमभाव है; एक त्रिकाली ध्रुवभाव ही परमभाव है; इसलिए ध्रुव पर दृष्टि दे तो पर्याय में मुक्ति हो, ऐसा कहने का आशय है। परिपूर्ण ध्रुव का स्तम्भ विराजमान है, उसके आश्रय बिना श्रद्धा, ज्ञान, और स्थिरता सम्यक् नहीं होते; इसलिए पर्याय को द्रव्य में झुका! काम तो पर्याय में ही लेना है

परन्तु उसका कारण जो द्रव्यस्वभाव है, उसके लक्ष्य, श्रद्धा और लीनता बिना मोक्ष का मार्ग उत्पन्न नहीं होता है।

यहाँ पर्याय को विसदृश कहा, इसलिए विकारी कहना नहीं है परन्तु उत्पाद और व्यय... उत्पाद और व्यय हुआ करता है, इस अपेक्षा से पर्याय को विसदृश कहा है। सदृश-एकरूप भगवान आत्मा पर दृष्टि स्थापित करने से विसदृश पर्याय में भी निर्मलता होती है। भाई! यह तो अन्दर का खेल कोई अलग प्रकार का है! यह तो जाने वह माने... वीतराग का कहा हुआ तत्त्व कोई अलौकिक है, उसे तूने जाना नहीं है। भाई! श्रीमद् ने कहा है न? प्रभु! आपके द्वारा कथित तत्त्व को हमने पहचाना नहीं। भगवान द्वारा कथित दया, शान्ति, क्षमा, और पवित्रता को मैंने पहचाना नहीं।

अनन्त गुण का एक सदृश ध्रुव परमपारिणामिकभाव है। उस परमभाव में बन्ध और मोक्ष, ऐसा कुछ नहीं है परन्तु पर्यायदृष्टि से देखें तो पर्याय में बन्ध और मोक्ष है, वह अपरमभाव है। एकरूप त्रिकालध्रुव, वह परमभाव है; इसके अतिरिक्त केवलदर्शन, केवलज्ञान, अनन्त वीर्य आदि सभी पर्यायें अपरमभाव हैं। एक समय की प्रत्येक अवस्था अपरमभाव है। त्रिकालभाव, वह परमभाव है। समझ में आया?

अपने स्वभाव को भूला हुआ आत्मा, अपनी पर्याय में शुभाशुभरूप परिणमता है और जन्म-मरण को करता है। जन्म-मरण, अर्थात् शरीर के जन्म-मरण की बात नहीं है परन्तु अपनी पर्याय में जन्म-मरण को करता है और कर्म को बाँधता है, अर्थात् कर्म-बन्धन में निमित्त है तथा जिस पर्याय में अपने स्वभाव का भान होता है, शुद्धता की अनुभूति होती है, वह पर्याय, मोक्ष को करती है, अर्थात् शुद्धोपयोगरूप परिणमित होकर मोक्ष को करती है।

एकरूप परमस्वभाव की दृष्टि से देखें तो वह भाव तो बन्ध को भी करता नहीं और मोक्ष को भी करता नहीं। उस परमभाव पर दृष्टि कर! ऐसा कहना है। दृष्टि स्वयं उत्पाद-व्ययवाली है परन्तु उसका विषय ध्रुव है।

इतनी बात सुनकर शिष्य को प्रश्न उत्पन्न हुआ, वह पूछता है - हे

प्रभु! शुद्ध द्रव्यार्थिकस्वरूप शुद्ध निश्चयनय से आत्मा, मोक्ष का भी कर्ता नहीं तो ऐसा समझना चाहिए कि शुद्धनय से मोक्ष ही नहीं और यदि मोक्ष ही नहीं तो मोक्ष के लिए प्रयत्न करना भी व्यर्थ है?

शिष्य के प्रश्न का योगीन्द्रदेव उत्तर देते हैं कि मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक होता है। मोक्ष की पर्याय, बन्ध का व्यय हो, तब होती है परन्तु वस्तुस्वरूप से देखें तो बन्ध होता ही नहीं; इसलिए बन्ध के अभावरूप मोक्ष भी वस्तुस्वरूप में (त्रिकाली ध्रुवस्वभाव में) नहीं है। शुद्धनिश्चय से, अर्थात् त्रिकाल सत्‌रूप रहनेवाले नय से देखें तो बन्ध, जीव को नहीं और बन्ध के अभावरूप मोक्ष भी शुद्धनिश्चय से नहीं। यदि शुद्धनिश्चयनय से जीव को बन्ध होवे तो बन्ध ही सदा रहेगा, बन्ध का अभाव ही नहीं होगा। ध्रुव चीज में बन्ध होवे तो बन्ध भी ध्रुव ही रहे परन्तु ध्रुव में बन्ध है ही नहीं; पर्याय में बन्ध है और उसके अभावपूर्वक मोक्ष भी पर्याय में होता है।

इस बात को समझाने के लिए आचार्यदेव एक दृष्टान्त देते हैं। कोई एक पुरुष साँकल से बँधा हुआ है और एक पुरुष बन्धनरहित है अथवा ऐसा समझो कि एक मनुष्य जेल में गया है और दूसरा घर में ही है। तो जब पहला मनुष्य जेल में से छूटकर घर में आवे, तब उसे तो ऐसा कहा जाता है कि तुम मुक्त हो गये? परन्तु जो जेल में गया ही नहीं, उसे मुक्त हुए — ऐसा कहोगे तो? उसे क्रोध आयेगा कि मैं कहाँ जेल में गया था कि मुझे मुक्त होना पूछते हो? जेल में गया हो, वह छूटता है। इसी प्रकार जिस जीव को बन्ध हुआ है, उसे ही मुक्ति होती है। व्यवहारनय से जीव को बन्ध हुआ है और मुक्ति हो सकती है तथा उसका उपाय भी है परन्तु शुद्धनिश्चयनय से जीव को बन्ध नहीं तथा मुक्ति भी नहीं।

अशुद्धनय से बन्ध है, इसलिए बन्ध के नाश का उपाय भी अवश्य करना चाहिए। उसके लिए उपाय क्या करना? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, वह उपाय है।

सम्यग्दर्शन किस प्रकार होता है? अपनी दृष्टि को निमित्त, राग, और पर्याय से हटाकर त्रिकाली स्वभाव पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है।

दृष्टि को परनिमित्त पर रखने से सम्यक्त्व नहीं होता। दया, दान, भक्ति, पूजा आदि राग पर दृष्टि होने से भी सम्यक्त्व नहीं होता और वर्तमान दशा में दर्शन-ज्ञान-वीर्य का उघाड़ है, उसमें दृष्टि देने से भी सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता। स्वभाव की दृष्टि से ही सम्यक्त्व होता है। वस्तुस्थिति ऐसी है, इसमें कठिन कुछ नहीं परन्तु लोगों ने दूसरे प्रकार से मान लिया है, इसलिए उन्हें कठिन लगता है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है, उसमें कठिन और सरल, ऐसा कुछ नहीं है।

जीव की वर्तमान पर्याय, राग में अटकी हुई है, वह भावबन्ध है और बन्ध का अभाव करके मुक्ति भी पर्याय में होती है; इसलिए व्यवहारनय से जीव में बन्ध और मोक्ष है परन्तु शुद्धनिश्चयनय से न बन्ध है अथवा न मोक्ष है। निश्चय तो सत् और शुद्ध त्रिकाल है। अशुद्धनय, अर्थात् व्यवहारनय से बन्ध है, वह उपचरितसद्भूतव्यवहारनय का विषय है और बन्ध के नाश के प्रयत्नरूप मोक्षमार्ग तथा उसके फलरूप मोक्ष, वह अनुपचारसदभूतव्यवहारनय का विषय है। व्यवहार, अर्थात् रागरूप व्यवहार की बात नहीं। मोक्षमार्ग की निर्मलपर्याय भी व्यवहार है और मोक्षपर्याय भी व्यवहार है; इसलिए व्यवहार का कारण व्यवहार कहा है परन्तु दया, दान के विकल्परूप व्यवहार, वह मोक्ष का कारण नहीं; वह तो बन्धमार्ग में जाता है। वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता है।

स्वभाव का अवलम्बन करके शुद्धोपयोग होता है, वह भी नया होता है; इसलिए व्यवहार है और उसके फलरूप पूर्ण शुद्धता भी पर्याय में नयी होती है, इसलिए व्यवहार है। वह ध्रुव नहीं, इसलिए निश्चय नहीं कहकर उसे सद्भूतव्यवहार का विषय कहा है अथवा पर्याय स्वयं ही अंश होने से व्यवहार है; उसका आश्रयभूत द्रव्य त्रिकाल है, इसलिए वह निश्चय है।

यहाँ व्यवहार की व्याख्या यह है कि ध्रुव में उत्पाद-व्यय का होना, वह व्यवहार है, पर्यायमात्र व्यवहार है। वह भले ही शुभ-अशुभ पर्याय हो या शुद्ध उपयोग हो या मोक्ष की पर्याय हो; उन सब पर्यायों को यहाँ व्यवहार कहा है। यह अध्यात्म का व्यवहार है। पूर्व के बनारसीदासजी

जैसे पण्डितों ने भी यह व्यवहार कहा है। ध्रुववस्तु तो निष्क्रिय है, वह निश्चय है; उसके अवलम्बन से होनेवाली मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय, व्यवहार है, सक्रिय है। ध्रुव द्रव्यस्वभाव में परिणमन नहीं, इसलिए वह निष्क्रिय है, परन्तु पर्याय में विकल्प उठता है, वह बन्धरूप सक्रिय अवस्था है; मोक्षमार्ग प्रगट होता है, वह मोक्षरूप सक्रिय अवस्था है।

अहो! वीतराग कथित तत्त्व अलौकिक है! अहो, वीतराग द्वारा अनुभूत पूर्ण वीतरागमार्ग!! श्रीमद्जी ने एक जगह कहा है न? 'अहो! इस देह की रचना! अहो चैतन्य की सामर्थ्य! अहो यह ज्ञानी! अहो, ज्ञानी की खोज! अहो, ज्ञानी का ध्यान! अहो, ज्ञानी की समाधि! अहो, उनका वचनयोग!' अद्भूत बात की है। अन्तर की वास्तविक वीतरागता के भास में ऐसा स्वरूप देखकर 'अहो!!' हो जाता है। श्रीमद् राजचन्द्र में बहुत भरा है, परन्तु अर्थ समझे तो हित हो; अपना पक्ष रखकर पढ़े तो किस काम का?

तेरे पास पुस्तक हो उससे क्या! तेरे पास आत्मा है, उसकी बात कर न! अरे! सबके पास भगवान आत्मा है, वह त्रिकाल सत् है। वस्तु में एकान्त से निष्क्रियपना कैसे हो! यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग के परिणाम को भी सक्रिय होने से व्यवहार कहा है। सक्रियपना नहीं है, ऐसा नहीं है। वेदान्त को यह बात नहीं जमेगी, उन्होंने पर्याय को उड़ाया है। वेदान्त के कर्ता ने वस्तु को देखा ही नहीं है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य निष्क्रिय है। निष्क्रिय, अर्थात् पर की क्रिया को तो नहीं करे, राग को भी नहीं करे और मोक्ष की पर्याय को भी वह नहीं करे, ऐसा निष्क्रिय है। निष्क्रिय तत्त्व, सक्रिय तत्त्व को कैसे करे? निष्क्रिय तत्त्व कुछ नहीं करे, इसलिए शुद्धनिश्चयनय से वस्तु में बन्ध और मोक्ष नहीं है। अशुद्धनिश्चयनय से बन्ध है और मुक्ति है (साक्षात् शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति है) अशुद्धनिश्चयनय, (साक्षात् शुद्धनिश्चयनय) कहो या व्यवहार कहो, एक ही है। मुक्ति की पर्याय शुद्ध होने पर भी वस्तु का अंश है – खण्ड है, इसलिए व्यवहार में जाती है। व्यवहार से बन्ध होने से बन्ध के नाश का यत्न भी आवश्यक है। यत्न-प्रयत्न क्या करना? ध्रुव

का लक्ष्य करना, वह यत्न है, वह पर्याय है; इसलिए व्यवहार है और उस व्यवहारनय के फलरूप मोक्ष भी पर्याय है, इसलिए व्यवहार है।

यहाँ गाथा में यह अभिप्राय है कि सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है, बाकी सब हेय है। सिद्ध समान अपना ध्रुव द्रव्य शाश्वत् शुद्ध है, उसकी अरागी दृष्टि, ज्ञान, और शान्ति के काल में शुद्धात्मा ही उपादेय है। वीतरागी शान्ति की पर्याय का लक्ष्य, ध्रुव उपादानभूत आत्मा पर है, इसलिए वही उपादेय है। समझ में आया? यह विश्राम का वाक्य है और जितना समझ में आता है, वह विश्राम का मार्ग है।

ध्रुव शुद्ध निजवस्तु पर दृष्टि देकर स्थिर होनेवाली दशा को निर्विकल्प शान्ति कहते हैं, उसमें अपना द्रव्य ही उपादेय है; अन्य सर्व हेय है। क्षायिक समकित की पर्याय प्रगटी है, वह भी द्रव्य की एकाग्रता के काल में हेय है क्योंकि द्रव्य के लक्ष्य से ही चारित्र की पर्याय प्रगट होती है। समकित के लक्ष्य से चारित्र नहीं होता, इस अपेक्षा से ही निश्चयमोक्षमार्ग और मोक्ष भी हेय है; एक परमात्मद्रव्य वस्तु ही उपादेय है, बाकी सब जाननेयोग्य है — ऐसा इस परमात्मप्रकाश में कहते हैं।

अरे! जिसे यह निज घर की पूर्णता की बात भी सुनने को नहीं मिले, वह कब प्रयत्न करे और कब स्थिर हो! जिन्दगी ऐसी की ऐसी व्यर्थ चली जाती है, उसमें यदि वाद-विवाद करे तो झगड़ा होता है और वस्तु तो एकतरफ रह जाती है।

इसे पहले विश्वास में तो आना चाहिए कि शाश्वत् गुणधाम निजवस्तु एक ही उपादेय है, उसमें ही लक्ष्य की डोर बाँधने जैसी है। जिसे निर्मल पर्याय प्रगट हुई हो, उसे भी पर्याय पर लक्ष्य करने योग्य नहीं है, इस अपेक्षा से पर्याय हेय है। जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ है, ऐसे मुनियों को भी कषाय के अभावरूप चारित्रदशा, आश्रय करने के लिये उपादेय नहीं है; इसीलिए मुनियों ने तो त्रिकाल परमेश्वर द्रव्य पर नजर लगायी है। वह एक ही उन्हें आदरणीय है, बाकी कुछ आदरणीय नहीं।

जहाँ शुद्धपर्याय भी आदरणीय नहीं, वहाँ हरितकाय नहीं खायी या आम नहीं खाया - त्याग किया, इसकी उपादेयता कहाँ रही? इससे भी आत्मा को लाभ हो और आत्मा से भी लाभ हो - ऐसा स्याद्वाद नहीं है। भगवान! तू कहाँ पूरा नहीं है कि तुझे पर का आश्रय लेना पड़े? मूलवस्तु अपना आत्मा है, उसका लक्ष्य करे, तब निर्मल पर्याय प्रगट होगी परन्तु वह पर्याय, हेय है; आदरणीय तो एक चिदानन्द प्रभु ही है। शुरुआत से लेकर केवलज्ञान हो, तब तक एक चिदानन्द पर नजर करनी है क्योंकि वह एक ही शाश्वत् शुद्ध ध्रुववस्तु है।

ऐसा आत्मा मेरे लक्ष्य में नहीं था, वह मुझे गुरु ने दिया, अर्थात् गुरु ने समझाया। वह स्वयं समझा, तब गुरु ने आत्मा दिया - ऐसा कहते हैं। प्रभु! आपने कहा, वैसा आत्मा मेरे लक्ष्य में ही नहीं था।

यहाँ गुरु कहते हैं कि द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत चेतन महाप्रभु का - एक का ही लक्ष्य कर! उसका ही आश्रय ले! वह एक ही उपादेय है, उसके आश्रय से ही मोक्ष होता है; इसलिए वही आदरणीय है।

(श्री परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग-1, गुजराती, पृष्ठ 307-314)

www.vitragvani.com www.vitragvani.com

अवश्य देखें, सुनें एवं पढ़ें

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो एवं वीडियो प्रवचन जो लगभग 9200 की संख्या में उपलब्ध हैं तथा दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा रचित अनेकों शास्त्र एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन साहित्य, दिगम्बर जैनाचार्यों का परिचय, जैन भूगोल, भक्ति-संगीत सभी एक ही वेबसाईट पर उपलब्ध हैं। जिन्हें सुना, पढ़ा और देखा जा सकता है। साथ ही आवश्यकतानुसार डाउनलोड भी किया जा सकता है।

वेबसाईट का नाम — www.vitragvani.com

सम्पर्क सूत्र - श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

Ph. : 022-26130820, 26104912, E-mail - info@vitragvani.com

परिग्रह से भयभीत एक परिवार की कथा

जीवों को धन, धान्य, दास, दासी, सोना, चाँदी आदि जो तृष्णा के जाल में फंसाकर दु:ख का कारण होते हैं, उनके त्यागी ही साधु-मुनि हैं। इससे उत्कृष्ट त्याग की सीमा नहीं है। उन जिन भगवान को नमस्कार करके परिग्रह से भयभीत दो भाईयों की कथा लिखी जाती है।

दशार्ण देश के एकरथ नामक शहर में धनदत्त सेठ अपनी स्त्री धनदत्ता और कुछ सन्तानों के साथ रहता था। पुत्र का नाम धनदेव, धनमित्र और कन्या का नाम धनमित्रा था। धनदत्त की मृत्यु के पश्चात् दोनों भाईयों का धन नष्ट हो गया। वे बहुत ही दरिद्र हो गये। दोनों भाई सहायता की आशा से अपने मामा के घर कौशाम्बी गये और उनको पिता की मृत्यु आदि के समाचार कहे। मामा उनकी परिस्थिति सुनकर दु:खी हुआ और उनको आश्वासन देकर आठ कीमती रत्न दिये, जिससे वे दोनों भाई अपना संसार चला सकें। वह पुरुष धन्य है कि जो ऐसे याचकों की आशा ऐसी सहानुभूति के साथ अपना धन देकर पूरी करता है।

दोनों भाई रत्न लेकर अपने गाँव की तरफ रवाना हुए। रत्नों के लोभ से रास्ते में दोनों भाईयों की नीयत बिगड़ गयी और इस कारण उन दोनों को परस्पर

एक-दूसरे को मारने की इच्छा उत्पन्न हो गई। इतने में वे दोनों गाँव के समीप आ गये और उसकी सुबुद्धि जागृत हो गयी। दोनों भाई अपने नीच विचारों पर पश्चाताप करने लगे और परस्पर अपने विचार प्रकट करके अपनी दुर्भावना निकालने लगे। ऐसे घृणित विचारों का मूल इन रत्नों का लोभ ज्ञात हुआ; इस कारण रत्नों को वेगवती नदी में फेंककर घर आ गये। उन रत्नों को एक मछली निगल गई, जो मछुआरे के जाल में फँस गई। मछुआरे को मछली को चीरते हुए उसके पेट में से रत्न मिले जो उसने बाजार में बेच दिये।

कर्मयोग से वे रत्न माता धनदत्ता के हाथ में आ गये। माता को रत्नों के लोभ से अपने पुत्रों को मार डालने का विचार आया, परन्तु बाद में उसे भी अपने कुत्सित विचारों पर पश्चाताप हुआ और इस कारण ये रत्न अपनी पुत्री को दे दिये। उन रत्नों को पाकर पुत्री को भी खोटी भावना से अपनी माता और भाईयों को मार डालने के विचार आये, परन्तु वह विचार करते ही समझ गई कि संसार में धन का लाभ समस्त पापों का मूल है; इसलिए बहिन धनमित्रा ने उन रत्नों को अपने भाईयों को सौंप दिया।

भाईयों ने उन रत्नों को पहचान लिया। उन्हें रत्न प्राप्ति की सारी परिस्थिति जानकर बहुत वैराग्य हुआ। इस कारण समस्त दुखों का कारण सांसारिक ममत्व को छोड़कर उन दोनों भाईयों ने दमधरमुनि के समीप जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। उन्हें साधु हुआ देख, उनकी माता और बहिन भी आर्यिका हुई। आगे चलकर वे दोनों भाई महातपस्वी, महामुनि हुए और जगत के जीवों का कल्याण करने लगे।

लोभ अकेले संसार दु:खों का मूल कारण ही नहीं, अपितु माता-पिता, भाई-बहन आदि को परस्पर ठगने के कुत्सित विचारों को उत्पन्न करने का घर है। बुद्धिमानों को अपने हित के लिये ऐसे लोभ को मन, वचन, कर्म से छोड़कर जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदेशित धर्म में अपने मन को दृढ़ करना चाहिये। ●● *- आराधना कथाकोष भाग-2 में से*

समाचार-सार

तीर्थधाम मङ्गलायतन में डॉ. भारिल्ल

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तीर्थधाम मङ्गलायतन में दिनांक 28 जुलाई से 07 अगस्त तक क्रमबद्धपर्याय पर विशेष शिविर का आयोजन किया गया। शिविर में अध्यापन हेतु पण्डित अभयकुमार शास्त्री देवलाली विशेष रूप से आये हुए थे, जिन्होंने प्रतिदिन तीनों समय छात्रों को क्रमबद्धपर्याय विषय का विस्तृत अध्ययन कराया।

इसी दौरान श्री पवन जैन के स्वास्थ्य की कुशलक्षेम पूछने हेतु दिनांक 05 से 07 अगस्त को तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल मङ्गलायतन पहुँचे और उनके क्रमबद्धपर्याय विषय पर तीन विशेष व्याख्यानों का लाभ मिला। डॉ. भारिल्ल ने बताया कि क्रमबद्धपर्याय जिनागम का चर्चित एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, जिसमें निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान आदि सभी सिद्धान्त समा जाते हैं। प्रत्येक वस्तु निश्चित क्रमानुसार परिणमित होती है। किस वस्तु में, किस समय कौनसी पर्याय उत्पन्न होगी, यह निश्चित है। क्रमबद्धपर्याय वस्तु के परिणमन की व्यवस्था है। सर्वज्ञता के दर्पण में वस्तु के परिणमन की क्रमबद्ध व्यवस्था को सहज देखा जा सकता है। कोई भी वस्तु किसी के आधीन नहीं है। वह अपनी स्वाधीन योग्यतानुसार ही परिणमित होती है।

शिविर में प्राय: पूजन विधान के उपरान्त गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन भी क्रमबद्धपर्याय पर ही चलाया गया। सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति का आयोजन किया गया। इस शिविर में ब्रह्मचारी कैलाशचन्द जैन 'अचल', ललितपुर; पण्डित अशोक लुहाडिया; पण्डित पीयूष शास्त्री, जयपुर; पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सतीश जैन एवं श्री विनीत जैन इत्यादि विद्वान उपस्थित थे।

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सम्पन्न

कोलारस-शिवपुरी : यहाँ होटल फूलराज परिसर स्थित श्री आदिनाथ जिनालय में दिनांक 15 से 22 जुलाई तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्रह्मचारी अभिनन्दन शास्त्री, खनियांधाना; पण्डित संजय शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन; पण्डित अनिल शास्त्री 'धवल', भोपाल; पण्डित अमित शास्त्री, लुकवासा; पण्डित सुकुमाल शास्त्री, लुकवासा; मङ्गलार्थी देवेन्द्र जैन; पण्डित मांगीलाल जैन, कोलारस; पण्डित गिरनारीलाल जैन, कोलारस एवं

पण्डित किशनमल जैन, कोलारस के प्रवचनों व कक्षाओं का लाभ मिला।

शिविर के ध्वजारोहणकर्ता श्री महावीरप्रसाद जैन 'डबरा' थे। शिविर में लगभग 500-600 लोगों ने धर्म लाभ लिया।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्रह्मचारी अभिनन्दन शास्त्री एवं पण्डित संजय शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन के निर्देशन में पूर्ण हुए।

मङ्गल समर्पण ग्रन्थ वेब साईट पर उपलब्ध

तीर्थधाम मङ्गलायतन : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त वयोवृद्ध विद्वान पण्डित कैलाशचन्द्र जैन के जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित 900 पृष्ठीय 'मङ्गल समर्पण' ग्रन्थ www.mangalayatan.com वेब साईट पर उपलब्ध है। जिसे आसानी से पढ़ा एवं डाउनलोड किया जा सकता है।

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला का नवीन संस्करण

तीर्थधाम मङ्गलायतन : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त वयोवृद्ध विद्वान पण्डित कैलाशचन्द्र जैन के जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित, जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग का प्रथम संस्करण समाप्त हो जाने से अब इसका द्वितीय संस्करण, पण्डित कैलाशचन्द्र जैन परिवार एवं मुमुक्षु मण्डल देहरादून द्वारा अतिशीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है। इच्छुक महानुभाव / मण्डल इस ग्रन्थ के आर्डर प्रेषित कर सकते हैं। जिससे कितनी संख्या में ग्रन्थ प्रकाशन करना, यह निर्णय लिया जा सके।

हार्दिक क्षमाभाव

दशलक्षण पर्व के पावन अवसर पर विगत वर्ष में हुए सभी ज्ञात-अज्ञात अपराध एवं अवमाननाओं के लिये वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु, ज्ञानी-धर्मात्माओं एवं समस्त साधर्मी बन्धुओं से मङ्गलायतन मासिक परिवार हार्दिक क्षमायाचना करता है। *-सम्पादक*

मङ्गलायतन पत्रिका के पाठकों के लिये सूचना

मङ्गलायतन मासिक के जो भी पाठकबन्धु पीडीएफ फारमेट में मङ्गलायतन मासिक प्राप्त करने के इच्छुक हों। कृपया वे अपनी सदस्य संख्या का उल्लेख करते हुए ई-मेल-आईडी प्रेषित कर सकते हैं। अब मङ्गलायतन पत्रिका को ई-मेल पर उपलब्ध कराने की समुचित व्यवस्था कर दी गयी है।

आगामी कार्यक्रम

भीलवाड़ा में प्रतिष्ठा महोत्सव : दिसम्बर माह में

भीलवाड़ा : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन आत्मार्थी ट्रस्ट भीलवाड़ा द्वारा निर्मित श्री सीमन्धर जिनालय में स्थापित होनेवाले जिनबिम्बों का पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आगामी दिनाङ्क 24 से 30 दिसम्बर 2012 तक अत्यन्त हर्षोल्लासपूर्वक सम्पन्न होगा। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन एवं देश के ख्यातिप्राप्त विद्वानों का मङ्गल सान्निध्य प्राप्त होगा। इस अवसर पर समस्त साधर्मी बन्धुओं से भीलवाड़ा पधारने का विनम्र अनुरोध है।

वैराग्य समाचार

दिल्ली : सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं परमागम श्रावक ट्रस्ट सोनागिर के पूर्व अध्यक्ष, श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ के संस्थागत ट्रस्टी श्री पूनमचन्द सेठी का शान्त परिणामों से देह-परिवर्तन हुआ है। आप अत्यन्त सौम्य, सरल, एवं शान्तस्वभावी थे, सोनागिर में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावनोदय में निर्मित धार्मिक संकुल के निर्माण में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान है। तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रति आपका विशेष अनुराग रहा है एवं यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन से प्रेरणा पाकर आपने सोनागिर में भी विद्यानिकेतन की स्थापना करायी है। आपके निधन से मुमुक्षु समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

विशाखापट्टनम् : पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त श्री शशिभाई मूलजीभाई खारा का देहपरिवर्तन अत्यन्त जागृतिपूर्वक हुआ है। आप नियमितरूप से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का लाभ लेनेवाले गम्भीर स्वाध्यायी थे। आदरणीय बहिनश्री शान्ताबेन के गाँव अमरेली के निवासी थे।

पूना : श्री नमन पारेख (उम्र 18 वर्ष) पुत्र श्री धीरेन्द्र पारेख का शान्त परिणामों से अति अल्प आयु में देह परिवर्तन हुआ है। आप पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के ट्रस्टी श्री पारस जैन पारेख के भतीजे थे।

दिवंगत आत्मायें वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रभाव से प्राप्त तत्त्वज्ञान के संस्कारों से अभ्युदय को प्राप्त हों - ऐसी भावनापूर्वक तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार परिजनों को हार्दिक संवेदनाएँ प्रेषित करता है।